भारतीय अर्थव्यवस्था : प्रगति और संभावनाएँ*

दीपक मोहंती

यह मेरे लिए सम्मान और सौभाग्य का विषय है कि आज मैं हार्वर्ड में इस प्रकार के प्रतिष्ठित श्रोताओं के बीच बोलने जा रहा हूँ। मुझे यह अवसर प्रदान करने के लिए मैं प्रोफेसर बेंजामिन फ्रायडमैन और प्रोफेसर तरुण खन्ना को धन्यवाद देता हूँ । मैं भारतीय अर्थव्यवस्था के संबंध में बोलूँगा।

भारत 1.21 बिलियन लोगों का निवास-स्थान है जो विश्व आबादी का लगभग 17.4 प्रतिशत होता है। तथापि यह अमरीकी डालर के हिसाब से विश्व जीडीपी के केवल 2.4 प्रतिशत के और क्रय-शक्ति समानता के हिसाब से 5.5 प्रतिशत के बराबर है। अतः इसे और बढ़ाए जाने की अपार संभावनाएँ हैं । भारत की प्रगति से वैश्विक कल्याण का मुद्दा भी जुड़ा हुआ है, जैसाकि भारत में दुनिया की गहरी दिलचस्पी से प्रतिबिंबित होता है। लेकिन भारत, एक ही साथ, प्रेरित भी करता है और निराश भी करता है । यह तथ्य भारतीय अर्थव्यवस्था के संबंध में की गयी विभिन्न टिप्पणियों में प्रतिबिंबित होता है । याशेंग हुआंग और तरुण खन्ना ने फॉरेन पॉलिसी के जुलाई 2003 के अंक में अपने निबंध में, जिसपर बहुत बहस भी हुई, टिप्पणी की थी : 'क्या भारत चीन को पीछे छोड़ सकता है ? अब यह कोई मूर्खतापूर्ण प्रश्न नहीं है'। दि इकोनॉमिस्ट के 23 जुलाई 2011 के अंक में यह टिप्पणी की गयी : 'बीस वर्ष पहले लोगों ने कहा था कि जिस मानदंड से भारत को आँका जाना चाहिए वह है इसकी अन्तःशक्ति। इस पैमाने पर अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है'।

कम आय वाले अनेक महत्वाकांक्षी देशों ने 1950 के दशक में, भारत के आर्थिक प्रयोग को एक नये प्रजातंत्र के रूप में, सुनियोजित विकास के लिए एक उदाहरण के रूप में देखा था । कुछ देश विकास की प्रक्रिया में आगे बढ़ गये, लेकिन भारत पीछे रह गया । यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि प्रति व्यक्ति जीडीपी को दुगुना करने में भारत को 1950-51 से लेकर 1990-91 तक 40 वर्ष लगे। लेकिन वर्ष 1991-92 भारत के आधुनिक इतिहास में एक युगान्तरकारी क्षण था, क्योंकि उस समय के गंभीर भुगतान संतुलन के संकट के चलते दूरगामी आर्थिक सुधार करने पड़े जिसके परिणामस्वरूप भारत की वृद्धि संभावनाएँ प्रकट हुईं। इसके परिणामस्वरूप, केवल 15 वर्षों में, वर्ष 2006-07 तक भारत की प्रति व्यक्ति आय फिर से दुगुनी हो गयी। यदि वृद्धि की वर्तमान गति बनाये रखी जाती है, तो भारत की प्रति व्यक्ति आय पुनः अगले 10 वर्षों में, अर्थात्, 2017-18 तक दुगुनी हो सकती है। भारत की हाल की आर्थिक वृद्धि में तेजी उल्लेखनीय है, लेकिन इसमें संदेह नहीं कि इसकी गति को बनाये रखना चुनौतीपूर्ण होगा।

इस पृष्ठभूमि में मैं वर्ष 1991-92 से किये गये नीतिगत सुधारों का विशेष रूप से उल्लेख करना चाहता हूँ, अब तक किये गये नीतिगत सुधारों की समीक्षा करना चाहता हूँ और बाद में भविष्य में आने वाली नीतिगत चुनौतियों पर कुछ अनुचिंतन करना चाहता हूँ।

वर्ष 1991 के बाद नीतिगत सुधार

वर्ष 1991 का समष्टिआर्थिक संकट भारत के आर्थिक इतिहास में दो कारणों से मोड़ सिद्ध हुआ। पहला, राजकोषीय घाटे के कारण पैदा हुए बाह्य भुगतान संकट, जिसके चलते जुलाई 1991 में विदेशी मुद्रा भंडार घटकर 1 बिलियन अमरीकी डालर से कम हो गया, के समाधान के लिए एक रणनीति तैयार करनी पड़ी, ताकि समष्टिआर्थिक स्थिरता बहाल की जा सके । राजकोषीय घाटे और जीडीपी के बीच के अनुपात में तीव्र गति से हुए संशोधन और घाटों के मुद्रीकरण में कमी आने के परिणामस्वरूप 1990 के दशक के मध्य तक समष्टिआर्थिक संतुलन बहाल करने में मदद मिली । मुद्रीकरण पर राजकोषीय निर्भरता में कमी आने के चलते रिज़र्व बैंक को बैंकों से निधियों का सांविधिक आदान घटाने में मदद मिली और इसके चलते निजी क्षेत्र को संसाधन उपलब्ध कराए जा सके । दूसरा, व्यापार, विनिमय-दर प्रबंधन, उद्योग, लोकवित्त और वित्तीय क्षेत्र में व्यापक संरचनात्मक सुधार करने के एक साथ किये गये।

उसके बाद से औद्योगिक नीति उपायों के संदर्भ में एक स्थायी लक्ष्य रहा है उत्पादकता और दक्षता में सुधार लाने के लिए एक प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण का सृजन करना । नयी औद्योगिक नीति ने एकाधिकार संबंधी प्रतिबंधों को समाप्त करके, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और विदेशी प्रौद्योगिकी के आयात को मुक्त करके तथा सरकारी क्षेत्र के लिए अब तक आरक्षित क्षेत्रों को अनारक्षित बनाकर प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित किया । इन उपायों ने उद्योग के लिए एक अनुकूल वातावरण का सृजन किया ताकि यह अपनी प्रौद्योगिकी का उन्नयन कर सके और बढ़ती घरेलू और बाह्य माँग का प्रबंधन करने के लिए आयातों के माध्यम से अपनी क्षमता बढ़ा सके।

* 27 सितंबर 2011 को हार्वर्ड बिजनेस स्कूल, बोस्टन में श्री दीपक मोहंती, कार्यपालक निदेशक, भारतीय रिज़र्व बैंक, द्वारा दिया गया भाषण । धृतिद्युति बोस और अभिमान दास द्वारा दी गयी सहायता के लिए आभार व्यक्त किया जाता है ।

इस समय, मुख्यतः पर्यावरण, स्वास्थ्य, सुरक्षा और रणनीतिक महत्त्व के चलते केवल पाँच उद्योग लाइसेंसीकरण के अंतर्गत हैं। केवल दो उद्योग - परमाणु ऊर्जा और रेल-परिवहन -सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित हैं। औद्योगिक उत्पादों को लघु उद्योग क्षेत्र के लिए आरक्षित कर देने का मुद्दा अभी भी लटका पड़ा है । तथापि, लघु उद्योग की परिभाषा में परिवर्तन किया गया है, ताकि आधुनिकीकरण को सुविधाजनक बनाया जा सके और अब केवल 20 मदें लघु उद्योग क्षेत्र में विनिर्माण के लिए आरक्षित हैं । कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकांश क्षेत्रों में स्वचालित मार्ग से 100 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दी गयी है ।

इन्फ्रास्ट्रक्चर क्षेत्र को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया है । इन्फ्रास्ट्रक्चर के लिए निधियों की बड़ी जरूरतों पर विचार करते हुए सभी इन्फ्रास्ट्रक्चर क्षेत्रों में 100 प्रतिशत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति दी गयी है । विकास, परिचालन और इन्फ्रास्ट्रक्चर सुविधाओं के अनुरक्षण के व्यवसाय में लगे उद्यमों के लिए विस्तारित कर-अवकाश दिया गया है । इन्फ्रास्ट्रक्चर परियोजना के कार्यान्वयन के लिए एक अधिमान्य तरीके के रूप में सरकारी-निजी-सहभागिता पर जोर दिया गया है ।

कर-सुधार, सार्वजनकि क्षेत्र उपक्रमों की पुनर्संरचना और राजकोषीय-मौद्रिक समन्वय क्षेत्रों में किए जाने वाले सुधारों को, वर्ष 2004-05 से नियम-आधारित राजकोषीय समेकन-पथ के अंतर्गत अंततः लाये जाने के पूर्व, उक्त क्षेत्रों में व्यापक राजकोषीय सुधार लाए गए लेकिन इन सुधारों में वर्ष 2008-09 के वैश्विक वित्तीय संकट के कारण भाधा उत्पन्न हुई । कई वर्षों से सीमा-शुल्क में कटौती से मध्यम अवधि में भारत की आसियान स्तर की ओर अग्रसर होने की प्रतिबद्धता व्यक्त होती है।

समष्टिआर्थिक संरचना में परिवर्तन और वित्तीय बाजारों के विकास के साथ भारत के मौद्रिक नीति ढाँचे और उससे सहबद्ध मौद्रिक नीति की परिचालन क्रियाविधि का विकास हुआ है । एक युगांतरकारी घटना यह हुई है कि अप्रैल 1997 से राजकोषीय घाटे का स्वतः मुद्रीकरण किये जाने की प्रणाली समाप्त कर दी गयी है जिसने रिज़र्व बैंक को मौद्रिक नीति के संचालन में साधन की स्वतंत्रता प्रदान की है । इसके साथ सरकारी प्रतिभूतियों की नीलामी के आरंभ किये जाने से रिज़र्व बैंक मौद्रिक नियंत्रण के प्रत्यक्ष साधन से अप्रत्यक्ष साधनों की ओर जाने में समर्थ हुआ है ।

अर्थव्यवस्था को खोले जाने और वित्तीय क्षेत्र का विनियमन हटाए जाने के साथ मुद्रा की माँग संबंधी कार्य की स्थिरता संदेहास्पद हो गयी। अतः रिज़र्व बैंक ने 1980 के दशक के मध्य में अपनाये गये मौद्रिक लक्ष्य-ढाँचे को छोड़कर बहुविध संकेतक दृष्टिकोण अपनाया। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत, नीतिगत परिदृश्य तैयार करने के लिए, भिन्न-भिन्न बाजारों में प्रतिलाभ की दरों, मुद्रा में उतार-चढ़ाव, ऋण, राजकोषीय स्थिति, व्यापार, पूँजी-प्रवाह, मुद्रास्फीति की दर, विनिमय दर, पुनर्वित्तपोषण और विदेशी मुद्रा में लेन देन - उच्च बारंबारता आधार पर उपलब्ध - जैसे विभिन्न संकेतकों को उत्पादन संबंधी आँकड़ों के साथ रखकर उनसे तुलना की जाती है । यह दृष्टिकोण धीरे-धीरे विकसित होता रहा और इस समय हमारे सामने इसका काफी विकसित रूप है जिसके अंतर्गत, समष्टिआर्थिक मूल्यांकन के लिए, रिज़र्व बैंक के औद्योगिक संभावना सर्वेक्षण, क्षमता उपयोग सर्वेक्षण, व्यावसायिक पूर्वानुमान सर्वेक्षण और मुद्रास्फीति प्रत्याशा सर्वेक्षण से प्राप्त प्रगामी संकेतकों का उपयोग किया जाता है । मौद्रिक नीति के परिचालन लक्ष्य के रूप में एकदिवसीय ब्याज दर के उभरने के साथ ही मौद्रिक नीति की परिचालन क्रियाविधि में भी परिवर्तन हुआ।

वित्तीय क्षेत्र में, उद्देश्य यह था कि बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं को परिचालनगत नमनीयता और कार्यात्मक स्वायत्तता प्रदान की जाये ताकि वे संसाधनों का आवंटन अधिक दक्षता से कर सकें । वित्तीय क्षेत्र में किए गए कुछ महत्त्वपूर्ण उपाय थे : सांविधिक पूर्व-क्रय अधिकार में कटौती, ताकि वाणिज्यिक उधार देने के लिए अधिक निधि उपलब्ध हो, ब्याज दर विनियमन समाप्त करना, जिससे कीमतों का निर्धारण बाजार कर सके, निजी क्षेत्र के बैंकों को अनुमति देना, ताकि अधिक प्रतिस्पर्धी वातावरण का सृजन हो, सार्वजिनक क्षेत्र के बैंकों में सरकार की हिस्सेदारी को कम करना और विवेकपूर्ण मानदंड स्थापित करना, यथा, पूँजी पर्याप्तता, आय-निर्धारण, प्रावधानन तथा एक्सपोजर मानदंड, ताकि बैंकिंग प्रणाली को सुदृढ़ किया जा सके और साथ ही अतिरिक्त पारदर्शिता एवं प्रकटीकरण मानकों में सुधार लाया जा सके ।

वित्तीय बाजारों का विकास मौद्रिक नीति के संचरण की परिचालनगत प्रभावोत्पादकता में सुधार लाने के लिए अनिवार्य मानी गयी है । वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के पहले चरण के दौरान विविध संरचनात्मक कठोरताओं को शिथिल किया गया ताकि वित्तीय बाजारों में सहभागिता बढ़े और बाजार-खंडों के बीच अंतर-सम्बद्धता विकसित और मजबूत हो और प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहन मिले । वित्तीय बाजारों में विविध सुधारात्मक उपायों का ध्यान बाजार स्पेक्ट्रम के विविध खंडों में चलनिधि की पर्याप्त उपलब्धता पर और विनियामक, विधिक, संस्थागत तथा प्रौद्योगिकी संबंधी आधारभूत संरचना को विकसित करने पर केंद्रित था ताकि बाजार के कार्यकलाप व्यवस्थित ढंग से चल सकें। सुधारों के

दूसरे चरण में अधिक परिष्कृत वित्तीय लिखतों की शुरुआत की गयी। साथ ही, वित्तीय बाजार की स्थिरता से संबंधित मुद्दों को नीति संबंधी कार्यसूची में प्राथमिकता प्रदान की गई।

बाह्य सुधारों का प्रमुख उद्देश्य था अव्यक्त निर्यात-विरोधी पूर्वग्रह में सुधार के जरिए एक अधिक खुली व्यापार प्रणाली की ओर जाना। इसके अतिरिक्त, इस बात की अधिक आवश्यकता थी कि व्यापार नीतियों, विनिमय दर नीतियों और औद्योगिक नीतियों को एकीकृत ढंग से देखा जाता । इसके अनुसरण में, नियंत्रित विनिमय दर प्रणाली का स्थान एक लचीली बाजार-नियंत्रित प्रणाली ने ले लिया। तबसे विनिमय दर अंतर्निहित माँग और आपूर्ति स्थितियों से और सतर्क निगरानी तथा नमनीयता के साथ निदेशित होती रही है और विनिमय दरों का प्रबंधन बिना किसी नियत या पूर्व-घोषित लक्ष्य या बैंड के व्यापक सिद्धांतों द्वारा नियंत्रित होता रहा है।

व्यापार नीति-सुधारों में निर्यात एवं आयात पर से मात्रात्मक प्रतिबंधों को वापस लेना, आयात लाइसेंसीकरण की प्रणाली को हटाया जाना और सामान्य प्रशुल्कों की सीमा को घटाया जाना तथा उन्हें छोटे-छोटे खंडों में विभाजित किया जाना शामिल थे ताकि उन्हें पूर्वी एशियाई अर्थव्यवस्थाओं के समकक्ष लाया जा सके । अधिकतम सीमा-प्रशुल्क दर को, जो वर्ष 1991-92 में 150 प्रतिशत थी, क्रमिक रूप में नीचे लाते हुए वर्ष 2008-09 तक 10 प्रतिशत किया गया । विविध प्रकार के बाह्य लेन-देनों पर प्रतिबंधों को उदारीकृत किये जाने के चलते वर्ष 1994 में आइएमएफ की करार की शर्तों के अनुच्छेद VIII के अंतर्गत चालू खाता परिवर्तनीयता लागू हुई।

पूँजीगत लेखा उदारीकरण के संदर्भ में भारत ने धीरे-धीरे और अधिक क्रमबद्ध रूप में पूँजीगत लेखा को उदार बनाना आरंभ किया। सक्रिय पूँजीगत लेखा प्रबंधन ढाँचा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और विदेशी संविभाग निवेश जैसे ऋणेतर पूँजी-अंतर्वाह सर्जक उपायों को तरजीह दिये जाने पर आधारित था। वस्तुतः पूँजीगत लेखा अनिवासी और निवासी कारपोरेटों के लिए मुक्त है, लेकिन वित्तीय संस्थाओं पर कुछ प्रतिबंध हैं और निवासी व्यक्तियों पर अधिक प्रतिबंध हैं।

वर्ष 1991 के बाद आर्थिक प्रगति

1990 के दशक में आर्थिक सुधारों को आरंभ किये जाने के बाद यह देखा गया कि भारत धीरे-धीरे प्रति वर्ष 3.5 प्रतिशत न्यून वृद्धि दर के जाल से निकल रहा था, जिसे शिष्टोक्ति के रूप में 'हिन्दू वृद्धि दर' कहा जाता था । वास्तविक जीडीपी वृद्धि, जो 1990 के दशक में औसतन 5.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही थी, 2000 के दशक में तेज होकर 7.3 प्रतिशत हो गयी । इस अवधि के दौरान वृद्धि-त्वरण का एक लक्षण यह था कि उद्योग और सेवा-क्षेत्र की वृद्धि दर मे बढ़ोतरी तो हुई, लेकिन कृषि की वृद्धि दर में गिरावट आयी । ऐसा इसलिए था कि 1960 के दशक के मध्य में हुई हरित क्रांति, जिसमें अनाज के उत्पादन में तेज वृद्धि देखी गयी थी, खासकर भारत के उत्तरी हिस्से में, के बाद प्रौद्योगिकी में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई । 1990 के दशक तक 'हरित क्रांति' का जोर समाप्त हो गया था । इसके परिणामस्वरूप 2000 के दशक में उपज में वृद्धि 1990 के दशक में देखी गयी वृद्धि से भी काफी कम थी।

यह उल्लेखनीय है कि 2000 के दशक में वृद्धि की अधिकतम और न्यूनतम सीमा में 2004-08 की 5-वर्षीय अवधि के लिए लगभग 9 प्रतिशत वार्षिक औसत जीडीपी वृद्धि दर के माममले में मोड़ का एक बिंदु सम्मिलित किया गया । अर्थव्यवस्था के सभी उप-क्षेत्रों में, जिसमें कृषि शामिल है, वृद्धि में इस अवधि के दौरान तेजी आयी । तथापि, वृद्धि की यह प्रक्रिया वैश्विक वित्तीय संकट के कारण बाधित हुई । बाद में, वर्ष 2009-11 के दौरान औसत वृद्धि दर गिरकर 7.8 प्रतिशत हो गयी, जिसमें कृषि और उद्योग, दोनों में उल्लेखनीय गिरावट हुई ।

वृद्धि के स्वरूप ने भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना को बदल दिया, जिसमें कृषि के हिस्से में गिरावट आकर वह वर्ष 2099-11 में लगभग 15 प्रतिशत हो गयी, जबकि 1990 के दशक में यह 28.4 प्रतिशत थी । इसी अवधि के दौरान सेवा-क्षेत्र में, जिसमें निर्माण शामिल था, तद्नुकूल वृद्धि होकर वह 52 प्रतिशत से बढ़कर 65 प्रतिशत हो गयी। तथापि, चिंता की बात यह है कि उद्योग का हिस्सा जीडीपी के लगभग 20 प्रतिशत पर अपरिवर्तित रहा । यह इस तथ्य को इंगित करता है कि पिछले दो दशकों में भारत की वृद्धि का त्वरण सेवा-क्षेत्र से प्रभावित रहा है। फिर भी, औसत वार्षिक औद्योगिक वृद्धि, जो 1990 के दशक में 5.7 प्रतिशत थी, वित्तीय संकट से बाधित होने के पूर्व वर्ष 2004-08 की अवधि के दौरान तेज होकर 9 प्रतिशत हो गयी (सारणी 1)।

जीडीपी में उद्योग का हिस्सा स्थिर बना रहा, लेकिन इस अवधि में विनिर्माण क्षेत्र में उल्लेखनीय संरचनात्मक रूपांतरण हुआ । पुनर्संरचना की प्रक्रिया के रूप में, संगठित विनिर्माण क्षेत्र में सकल मूल्य के जुड़ने से वह वर्तमान कीमत पर प्रतिवर्ष 8 प्रतिशत बढ़ा, लेकिन रोजगार में

सारणी 1: वास्तविक अर्थव्यवस्था

मद	1991-2000	2001- 2010	2004-2008	2009-2011
	1	2	3	4
(प्रतिशत परिवर्तन)				
1. समग्र वास्तविक जीडीपी	**5.7**	**7.3**	**8.9**	**7.8**
1.1 कृषि	3.2	2.4	5.0	2.3
1.2 उद्योग	5.7	7.3	9.0	6.7
1.2.1 विनिर्माण	5.6	8.0	10.0	7.1
1.3 सेवाएँ	7.1	9.0	10.1	9.5
2. माँग-पक्ष कुल राशियाँ				
2.1 निजी अंतिम उपभोग व्यय	4.8	6.4	7.4	7.9
2.2 सरकारी अंतिम उपभोग व्यय	6.3	5.8	5.6	10.6
2.3 सकल अचल पूँजी निर्माण	7.2	10.2	15.7	5.8
(प्रतिशत)				
3. जीडीपी में हिस्सा				
3.1 कृषि	28.4	19.4	18.9	14.9
3.2 उद्योग	20.1	20.0	20.1	20.1
3.3 सेवाएँ	51.5	60.6	61.1	65.0

1995-2003 की अवधि के दौरान प्रतिवर्ष 1.5 प्रतिशत गिरावट देखने को मिली । बाद में, 2004-09 के दौरान सकल मूल्य योजित वृद्धि में तेजी आई और यह वृद्धि वर्तमान कीमतों पर प्रतिवर्ष 20 प्रतिशत हो गयी; लेकिन यह भी महत्त्वपूर्ण है कि रोजगार में प्रतिवर्ष 7.5 प्रतिशत वृद्धि हुई ।

39.2 प्रतिशत कार्य-सहभागिता दर के साथ भारत के पास वर्ष 2009-10 में 400 मिलियन श्रमिक-बल उपलब्ध था । इसमें से 53 प्रतिशत कृषि-कार्य में लगा था और शेष 47 प्रतिशत कृषीतर कार्यकलाप में लगा था । कृषि के हिस्से के सिकुड़ने के बावजूद अधिक रोजगार कृषि-क्षेत्र में उपलब्ध है, लेकिन रोजगार संरचना का उल्लेखनीय लक्षण यह रहा कि, पहली बार, कृषि में लगे संपूर्ण श्रमिक बल में 2000 के दशक के उत्तरार्ध में कमी आयी (सारणी 2) । अर्थव्यवस्था में समग्र बेरोजगारी दर में गिरावट आयी और वह घटकर वर्ष 2009-10 में 6.6 प्रतिशत हो गयी ।

यह आश्चर्यजनक नहीं है कि वृद्धि-त्वरण के साथ सकल स्थायी पूँजी निर्माण की वृद्धि दर में तेज बढ़ोतरी हुई, जो 1990 के दशक के 7.2 प्रतिशत वार्षिक औसत के दुगुने से अधिक होकर वर्ष 2004-08 के उच्च वृद्धि वाले चरण में 15.7 प्रतिशत हो गयी थी। तथापि, यह संकट-पश्चात् अवधि में काफी गिरकर 5.8 प्रतिशत रह गयी है (सारणी 1)।

इस अवधि के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना में भी इसके खुलेपन के संदर्भ में परिवर्तन हुआ । यह रूढ़िबद्ध धारणा कि भारत एक बंद अर्थव्यवस्था है, भारतीय अर्थव्यवस्था के खोल दिये जाने से टिक नहीं पायी है जो अब तेज गति से आगे बढ़ रही है । वस्तुओं और सेवाओं का निर्यात और आयात, जो 1990 के दशक में 23 प्रतिशत पर था, वर्ष 2009-11 की हाल की अवधि में दुगुना से अधिक होकर 50 प्रतिशत हो गया है । यदि व्यापार प्रवाह पर पूँजी प्रवाह के साथ विचार किया जाये, तो खुलेपन में वृद्धि (जिसे चालू प्राप्ति एवं भुगतान और पूँजीगत प्राप्ति एवं भुगतान के रूप में मापा जाता है) अधिक नाटकीय थी, क्योंकि यह 1990 के दशक में जीडीपी का 42 प्रतिशत थी, जबकि हाल की अवधि में यह 107 प्रतिशत है (सारणी 3) । अनुभवमूलक साक्ष्य बताता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था के बढ़ते खुलेपन के साथ व्यापार और औद्योगिक चक्र वैश्विक व्यवसाय चक्र के अधिक तुल्यकालिक हो रहे हैं ।

वर्ष 2004-08 के उच्च वृद्धि वाले चरण में निर्यात एवं आयात और पूजी अंतर्वाह में भी तेज वृद्धि दर्ज की गयी । जीडीपी के प्रतिशत

सारणी 2: श्रमिक बल

(मिलियन में)

सामान्य स्थिति	1993-94	1999-00	2004-05	2009-10
	1	2	3	4
1. कृषि	**210.7**	**225.4**	**238.8**	**212.6**
1.1 स्व-नियोजित	126.6	130.2	153.2	127.9
1.2 नियमित मजदूरी / वेतनभोगी कर्मचारी	2.9	3.2	2.6	1.9
1.3 अनियत श्रमिक	81.2	91.9	83.0	82.9
2. कृषीतर	**115.8**	**140.0**	**169.5**	**187.4**
2.1 स्व-नियोजित	52.1	62.8	79.0	76.0
2.2 नियमित मजदूरी / वेतनभोगी कर्मचारी	40.2	47.9	55.6	60.5
2.3 अनियत श्रमिक	23.4	29.3	34.8	50.9
कुल	**326.5**	**365.4**	**408.2**	**400.0**

सारणी 3: खुलापन संकेतक

(जीडीपी के प्रतिशत के रूप में)

मद	1991-2000	2001-2010	2004-2008	2009-2011
	1	2	3	4
1. वस्तुओं और सेवाओं का निर्यात और आयात	22.9	39.2	40.8	49.8
2. चालू प्राप्तियाँ एवं भुगतान और पूँजीगत प्राप्तियाँ एवं भुगतान	41.9	78.7	83.5	106.5

के रूप में निवल पूँजी अंतर्वाह, जो 1990 के दशक में 2.2 प्रतिशत था, दुगुना से अधिक होकर 2004-08 के दौरान जीडीपी का 4.6 प्रतिशत हो गया । बाद में, वैश्विक वित्तीय संकट के बाद व्यापार और पूँजी अंतर्वाह, दोनों की वृद्धि दरों मे कमी आयी । भारतीय अर्थव्यवस्था के खुलेपन के साथ भारत की बाह्य स्थिति में सुधार हुआ, क्योंकि ऋण-जीडीपी अनुपात, जो 1990 के दशक में 29 प्रतिशत था, गिरकर हाल की अवधि में 19 प्रतिशत रह गया । इस अवधि के दौरान ऋण-चुकौती अनुपात में भी गिरावट आयी जो पहले 25 प्रतिशत थी और अब घटकर 5 प्रतिशत रह गयी है (सारणी 4)।

पूँजीगत लेखा में खुलापन के परिणामस्वरूप पूँजी का दुतरफा आवागमन हुआ है, जिसमें 2000 के दशक के मध्य से भारत के जावक एफडीआइ में तेज वृद्धि हुई है (सारणी 5) । जावक एफडीआइ मे सुधार ने मुख्यतः बाह्य भुगतान प्रणाली के प्रगामी उदारीकरण के बीच भारतीय कारपोरेटों के समुद्रपार बड़े सौदों को प्रतिबिंबित किया, जो उन्होंने बाजार हिस्सा प्राप्त करने और लागत में किफायत का फायदा उठाने के लिए किया ।

सारणी 5: विदेशी प्रत्यक्ष निवेश

(बिलियन अमरीकी डालर)

वर्ष	आवक	जावक	भारत में निवल एफडीआइ	जावक / आवक (%)
	1	2	3	4
2000-01	4.0	0.8	3.3	18.8
2001-02	6.1	1.4	4.7	22.7
2002-03	5.0	1.8	3.2	36.1
2003-04	4.3	1.9	2.4	44.7
2004-05	6.0	2.3	3.7	38.0
2005-06	8.9	5.9	3.0	65.9
2006-07	22.7	15.0	7.7	66.2
2007-08	34.7	18.8	15.9	54.2
2008-09	37.7	17.9	19.8	47.4
2009-10	33.1	14.4	18.8	43.3
2010-11	23.4	16.2	7.1	69.4

स्रोत: भारतीय रिज़र्व बैंक

राजकोषीय स्थिति में भी धीरे-धीरे सुधार दिखाई दिया, क्योंकि 2004-08 के उच्च वृद्धि वाले चरण के दौरान राजकोषीय घाटे में तेज गति से कमी आयी, जो नियम-आधारित राजकोषीय समेकन प्रक्रिया की ओर मुड़ने के साथ-साथ हुई। वास्तव में, 2004-08 के उच्च वृद्धि वाले चरण में केंद्र के लिए प्राथमिक अधिशेष दिखाई पड़ा जिससे ऋण धारणीयता में वृद्धि हुई। तथापि, घाटा संकेतकों में संकट-प्रेरित राजकोषीय विस्तार के बाद हाल की अवधि में विकृति आयी है (सारणी 6)।

औसत बचत दर में भी काफी वृद्धि हुई जो 1990 के दशक में जीडीपी का 23 प्रतिशत थी और 2000 के दशक में बढ़कर लगभग 31 प्रतिशत हो गयी जिसमें 33 प्रतिशत की सर्वोच्च बचत दर 2004-08 के उच्च वृद्धि वाले चरण के दौरान प्राप्त हुई । राजकोषीय समेकन

सारणी 4: बाह्य क्षेत्र

मद	1991-2000	2001- 2010	2004-2008	2009-2011
	1	2	3	4
1. भुगतान संतुलन				
1.1 व्यापारिक निर्यात (%परिवर्तन) Δ	8.6	17.7	25.4	15.8
1.2 व्यापारिक आयात (%परिवर्तन) Δ	9.6	19.5	32.3	14.6
1.3 व्यापार शेष /जीडीपी (%)	-2.8	-5.3	-5.4	-8.6
1.4 अदृश्य शेष /जीडीपी (%)	1.6	4.8	5.1	6.1
1.5 चालू खाता शेष /जीडीपी (%)	-1.3	-0.5	-0.3	-2.6
1.6 निवल पूँजी प्रवाह /जीडीपी (%)	2.2	3.4	4.6	2.7
1.7 भारत में एफडीआइ (बिलियन अमरीकी डालर)	1.6	16.3	15.3	31.4
1.8 रिज़र्व परिवर्तन (बीओपी आधार) (बिलियन अमरीकी डालर) (वृद्धि (-) /कमी (+)	-3.3	-22.9	-40.3	-2.1
2. बाह्य ऋण संकेतक				
2.1 ऋण-जीडीपी अनुपात (%)	29.0	19.0	17.7	18.6
2.2 ऋण-चुकौती अनुपात (%)	24.9	8.8	8.3	4.7

Δ डीजीसीआइ एंड एस डेटा पर आधारित

सारणी 6: सरकार के वित्त

(जीडीपी के प्रतिशत के रूप में)

मद	1991-2000	2001-2010	2004-2008	2009-2011
	1	2	3	4
1. केंद्र सरकार के वित्त				
1.1 कर राजस्व	6.8	7.2	7.6	7.4
1.2 राजस्व घाटा	3.0	3.4	2.3	4.4
1.3 राजकोषीय घाटा	5.9	4.8	3.6	5.8
1.4 प्राथमिक घाटा	1.6	0.8	-0.2	2.6
2. राज्य के वित्त				
2.1 सकल राजकोषीय घाटा	3.1	3.1	2.7	2.6
2.2 बकाया देयताएँ	22.3	29.3	30.1	24.8
3. संयुक्त सरकारी वित्त				
3.1 राजस्व घाटा	4.2	4.4	2.7	4.5
3.2 राजकोषीय घाटा	7.7	7.8	6.3	8.5
3.3 प्राथमिक घाटा	2.7	2.2	0.7	3.7
3.4 बकाया देयताएँ	63.2	75.1	76.5	68.5

ने समग्र बचत दर को ऊपर उठाने में मदद की क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र की बचत में काफी वृद्धि हुई। पूँजी उपयोग की दक्षता में भी सुधार हुआ क्योंकि वृद्धिशील पूँजी-उत्पादन अनुपात 2004-08 के उच्च वृद्धि वाले चरण में कम हो कर 3.7 हो गया, जबकि 1990 के दशक में यह 5 पर था। तथापि, बाद में संकट-पश्चात् अवधि में पूँजी दक्षता में कमी आयी (सारणी 7)।

उच्च वृद्धि मूल्य स्थिरता के वातावरण में प्राप्त की गई, क्योंकि हेडलाइन थोक मूल्य सूचकांक मुद्रास्फीति 2000 के दशक में गिरकर 5.5 प्रतिशत के वार्षिक औसत पर आ गयी, जबकि 1990 के दशक में यह 8.1 प्रतिशत थी। उपभोक्ता मूल्य मुद्रास्फीति में भी इसी प्रकार गिरावट आयी। यद्यपि, बाद में, संकट-पश्चात् अवधि में मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति में विपरीतता की स्थिति आई जब हेडलाइन डब्लूपीआइ

सारणी 8: मुद्रास्फीति

मद	1991-2000	2001-2010	2004-2008	2009-2011
	1	2	3	4
(वार्षिक औसत प्रतिशत परिवर्तन)				
1. थोक मूल्य सूचकांक	**8.1**	**5.4**	**5.5**	**7.1**
1.1 खाद्य वस्तुएँ	10.2	5.8	5.2	13.3
1.2 ईंधन समूह	10.6	8.9	7.3	7.2
1.3 खाद्येतर विनिर्मित उत्पाद	6.8	4.0	5.0	4.0
2. सीपीआइ-औद्योगिक कामगार	**9.5**	**5.9**	**5.0**	**10.6**
2.1 सीपीआइ-औद्योगिक कामगार खाद्यान्न	9.8	6.2	5.5	12.5

मुद्रास्फीति औसत 7 प्रतिशत हो गयी और उपभोक्ता मूल्य मुद्रास्फीति वर्ष 2009-11 में दो अंकों को पार कर गयी। खाद्यान्न मूल्य मुद्रास्फीति में वृद्धि विशेष रूप से 2009-11 के दौरान तेज हुई (सारणी 8)।

इस अवधि के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था के वित्तीय सुदृढ़ीकरण में भी वृद्धि हुई है : व्यापक मुद्रा (एम $_3$)-जीडीपी अनुपात, जो 1990 के दशक में औसतन 50 प्रतिशत था, 2009-11 की हाल की अवधि में बढ़कर 85 प्रतिशत हो गया। इस अवधि के दौरान ऋण व्याप्ति, जिसे ऋण-जीडीपी अनुपात के रूप में मापा जाता है, भी जीडीपी के 21 प्रतिशत से बढ़कर लगभग 50 प्रतिशत हो गई। 2004-08 के उच्च वृद्धि वाले चरण में निजी क्षेत्र को दिये गये बैंक ऋण में भी वृद्धि हुई, जो लगभग 27 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गयी, जबकि 1990 के दशक में यह लगभग 15 प्रतिशत थी। तथापि, 2004-08 के उच्च वृद्धि वाले चरण के दौरान एम $_3$ में औसत वृद्धि नियंत्रित रही, जिसने मूल्य स्थिरता में मदद की। यह इसलिए संभव हुआ क्योंकि सरकारी प्रतिभूतियों में बैंकों का निवेश घटकर 2004-08 के दौरान लगभग 13 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गया, जबकि 1990 के दशक में यह 21 प्रतिशत था। राजकोषीय सुदृढ़ीकरण ने मुद्रा प्रसार पर कोई अतिरिक्त दबाव डाले बिना, निजी क्षेत्र के ऋण प्रसार का मार्ग प्रशस्त किया (सारणी 9)।

सारणी 7: बचत और निवेश

मद	1991-2000	2001-2010	2004-2008	2009-2010
	1	2	3	4
(वर्तमान बाजार कीमत पर जीडीपी के अनुपात के रूप में)				
1. सकल घरेलू बचत	**23.0**	**30.7**	**33.4**	**33.0**
1.1 परिवारों की बचत	17.7	23.1	23.4	23.6
1.1.1 वित्तीय आस्तियाँ	9.9	11.0	11.3	11.3
1.1.2 भौतिक आस्तियाँ	7.8	12.1	12.1	12.4
1.2. निजी कारपोरेट क्षेत्र	3.8	6.3	7.2	8.0
1.3. सार्वजनिक क्षेत्र	1.5	1.3	2.9	1.3
2. सकल घरेलू पूँजी निर्माण	**24.4**	**31.2**	**34.3**	**35.5**
3. आइसीओआर *	**5.0**	**4.4**	**3.7**	**4.9**

* वास्तविक निवेश दर और वास्तविक जीडीपी वृद्धि का अनुपात

सारणी 9: मुद्रा और ऋण

मद	1991-2000	2001-2010	2004-2008	2009-2011
	1	2	3	4
(प्रतिशत परिवर्तन)				
1. संकीर्ण मुद्रा (M_1)	15.6	16.0	19.6	12.3
2. व्यापक मुद्रा (M_3)	17.2	17.5	18.6	17.4
3. खाद्येतर बैंक ऋण	15.4	22.4	26.7	18.7
4. सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश	20.9	17.7	13.3	16.2
(प्रतिशत)				
5. ऋण-जीडीपी अनुपात	20.6	37.7	39.5	49.7
6. व्यापक मुद्रा-जीडीपी अनुपात	49.9	73.6	74.3	84.6

नीतिगत चुनौतियाँ

बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) के लिए अगस्त 2011 में जारी किये गये प्रारूप दृष्टिकोण पत्र में वार्षिक जीडीपी वृद्धि दर का लक्ष्य 9 प्रतिशत रखा गया है । यह चुनौतीपूर्ण तो है, लेकिन ऐसा भी नहीं है कि इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता । क्यों ? क्योंकि भारत ने 2004-08 की अवधि के दौरान पहले ही लगभग 9 प्रतिशत की औसत वृद्धि दर प्राप्त कर ली थी, जो वैश्विक वित्तीय संकट द्वारा बाधित हुई थी । बाद में औसत वृद्धि लगभग एक प्रतिशत अंक तक गिरकर 2009-11 के दौरान 7.8 प्रतिशत हो गयी । वर्ष 2011-12 में, जो ग्यारहवीं योजना का अंतिम वर्ष था, इस वृद्धि के लगभग 8 प्रतिशत पर रहने की उम्मीद है । अतः वृद्धि को प्रति वर्ष एक अतिरिक्त प्रतिशत अंक तक बढ़ाया जाना होगा, जो चुनौतीपूर्ण होगा, क्योंकि इसके लिए एक अनुकूल वैश्विक वातावरण अपेक्षित होगा और देश में नीतिगत सुधार किया जाना जरूरी होगा ।ऐसे अनेक कार्य हैं, लेकिन जिन छह प्रमुख मुद्दों पर ध्यान दिया जाना अपेक्षित है, मैं उनपर ध्यान केंद्रित करूँगा।

पहला, भारत को कृषि उत्पादकता बढ़ानी होगी और कृषि को विविधीकृत करना होगा ताकि यह अपनी आबादी को खिला सके। सार्वजनिक रोजगार गारंटी कार्यक्रम (एमजीएनआरइजीए) के कार्यान्वयन के साथ खाद्यान्न-हकदारी में बढ़ोतरी हुई है, जो ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति परिवार एक सदस्य को 100 दिन के रोजगार की गारंटी देता है । इसने श्रमिकों को बेहतर सौदा-शक्ति दी है और, इसके फलस्वरूप, समग्र मजदूरी दरों में वृद्धि हुई है, जिससे खाद्यान्न की माँग में बढ़ोतरी हुई है । देश में इस समय खाद्यान्नों का पर्याप्त भंडार है, फिर भी यह दालों और तिलहन में आत्म-निर्भर नहीं है । इसके अलावा, आय में वृद्धि होने से प्रोटीन आधारित उत्पाद, यथा, मांस, अंडे, दूध और मछली तथा फलों और सब्जियों की माँग में वृद्धि हुई है। अतः कृषि को प्रोत्साहन देने के लिए एक अन्य प्रौद्योगिकी विस्फोट आवश्यक है । इसके साथ-साथ, ग्रामीण आधारभूत संरचना में निवेश के साथ आपूर्ति श्रृंखला के प्रबंधन पर भी अधिक जोर दिया जाना होगा। कृषि में वार्षिक वृद्धि दर को भी इस समय के 3 प्रतिशत से बढ़ाकर कम से कम 4 प्रतिशत करना होगा।

दूसरा, यह तथ्य कि समग्र श्रमिक बल का 53 प्रतिशत अभी भी कृषि क्षेत्र में नियोजित है - जिसका जीडीपी में हिस्सा काफी सिकुड़ गया है - परेशान करने वाला है । न केवल कृषि उत्पादकता में सुधार करने के लिए, बल्कि समग्र अर्थव्यवस्था में सुधार करने के लिए भी इस श्रमिक बल के बड़े हिस्से को कृषि क्षेत्र से निकालना होगा। यह उल्लेखनीय है कि इन सभी को लाभप्रद रूप में सेवा-क्षेत्र में शामिल किया जा सकता है । अतः औद्योगिक रोजगार को और उद्योग केयोगदान को भी और बढ़ाया जाना होगा। इसके लिए ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है, क्योंकि हमने देखा है कि समग्र जीडीपी में उद्योग का हिस्सा पिछले दो दशकों से गतिहीन बना हुआ है । इस दिशा में सरकार ने राष्ट्रीय विनिर्माण एवं निवेश क्षेत्र (एनएमआइजेड) बनाने के लिए बड़ा नीतिगत उपाय आरंभ किया है ताकि जीडीपी में विनिर्माण का क्षेत्रगत हिस्सा वर्ष 2022 तक बढ़ कर 25 प्रतिशत हो जाये और इस क्षेत्र में रोजगार का स्तर दुगुना हो जाये । उत्तम भौतिक आधारभूत संरचना, एक पुरोगामी निकास नीति, क्लीन एंड ग्रीन टेक्नोलॉजी को बढ़ावा देने के लिए संरचना, युक्तियुक्त निवेश प्रोत्साहन उपाय और व्यवसाय-अनुकूल अनुमोदन-तंत्र नये उपायों की आधारशिला होंगे।

तीसरा, औद्योगीकरण और बेहतर आर्थिक कार्यकलाप का समर्थन करने के लिए यह आवश्यक होगा कि आधारभूत संरचना क्षेत्र में निवेश को बढ़ावा दिया जाये । योजना आयोग के मूल्यांकन में बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) में 45 ट्रिलियन रुपये (1 ट्रिलियन अमरीकी डालर) के निवेश का सुझाव दिया गया है। दीर्घावधि निधियों की बड़ी जरूरत को देखते हुए आधारभूत संरचना का वित्तपोषण एक बड़ी चुनौती होगा । बजट-समर्थन के अतिरिक्त निधियों का बड़ा हिस्सा बैंकों से आया है । तथापि, इस पैमाने पर देशी और विदेशी बचत को आधारभूत संरचना में नियोजित करने के लिए घरेलू निजी कारपोरेट ऋण बाजार को विकसित किया जाना अपेक्षित होगा। आधारभूत संरचना के लिए भारी वित्तीय परिव्यय के अलावा अनेक गैर-वित्तपोषण कठिनाइयाँ हैं; विशेष रूप से भूमि अधिग्रहण में विलंब पर ध्यान देना आवश्यक है ताकि समय और लागत न बढ़े।

चौथा, सरकार के लिए आवश्यक होगा कि राजकोषीय सुधार की गुणवत्ता से समझौता किये बिना वह नियम आधारित संकट-पूर्व राजकोषीय सुदृढ़ीकरण के पथ पर लौटे। दोहरे घाटे के जोखिम से बचने और समग्र बचत दर को बढ़ाये जाने के लिए यह आवश्यक है। इसके लिए कर-संरचना में और सुधार किये जाने की जरूरत होगी, ताकि राजस्व-प्राप्ति में उछाल सुनिश्चित हो और व्यय की गुणवत्ता पर अधिक ध्यान दिया जाये, जिसमें आर्थिक सहायता कम किये जाने पर

जोर हो । इस संबंध में प्रत्यक्ष करों की आवंटनीय दक्षता और इक्विटी में सुधार लाने के लिए, जो प्रमुख सुधार किये जाने हैं, उनमें केंद्र और राज्यों द्वारा एकीकृत वस्तु एवं सेवा-कर(जीएसटी) प्रारंभ करना शामिल है, ताकि प्रपाती प्रभाव कम किया जा सके और कर अनुपालन तथा प्रत्यक्ष कर संहिता के परिचालन में सुधार लाया जा सके।

पाँचवाँ, ऋण बाजारों ने बचत करने वालों और निवेश करने वालों के बीच निधियों की कुशल मध्यस्थता के माध्यम से वृद्धि को बनाये रखने में परंपरागत रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है । यद्यपि भारत में भली-भाँति विविधीकृत वित्तीय प्रणाली मौजूद है और हाल में वित्तीय समावेशन के लिए अनेक उपाय किये गये हैं, फिर भी अनेक अन्य विकसित और उभरती अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में यहाँ ऋण-व्याप्ति कम है । वित्तीय समावेशन का प्रसार लड़खड़ाया हुआ है, क्योंकि लगभग 61 प्रतिशत आबादी के पास जमा खाते हैं लेकिन केवल 10 प्रतिशत आबादी के पास ऋण खाते हैं । रिज़र्व बैंक ने एक योजना प्रारंभ की है जिसमें 2000 की आबादी वाले सभी गाँवों में वर्ष 2012 तक परंपरागत बैंक शाखाओं और बिजनेस कॉरेस्पांडेंट - दोनों की सहायता से बुनियादी बैंकिंग सेवा उपलब्ध करायी जायेगी । त्वरित आर्थिक वृद्धि औपचारिक वित्त तक जन-समूह की पहुँच होने और ऋण की अधिक व्याप्ति पर निर्भर करेगी।

छठा, अनुभवमूलक साक्ष्य से पता चलता है कि मुद्रास्फीति का आरंभिक स्तर 4-6 प्रतिशत की सीमा में है । अतः मुद्रास्फीति को वर्तमान स्तर से नीचे लाये बिना उच्च स्तर की वृद्धि बनाये रखना कठिन होगा । इसके लिए अधिक मौद्रिक-राजकोषीय समन्वय आवश्यक होगा और आपूर्ति-जन्य कठिनाइयों को, विशेष रूप से कृषि के क्षेत्र में, दूर किया जाना होगा।

उपसंहार

विश्व में भारत को एक प्रमुख आर्थिक शक्ति के रूप में उभरता हुआ देखने की कल्पना करते हुए डॉ. मनमोहन सिंह ने वर्ष 1991-92 के अपने संघीय बजट भाषण में, जिसमें व्यापक विस्तार वाले आर्थिक सुधारों की घोषणा की गयी थी, विक्टर ह्यूगो के कथन को उद्धृत किया था, 'पृथ्वी पर कोई भी शक्ति उस विचार को रोक नहीं सकती, जिसके पनपने का समय आ गया है'। तबसे हमने पीछे मुड़कर नहीं देखा, क्योंकि भारत ने संरचनात्मक सुधार आरंभ किये हैं और पिछले दो दशकों में पर्याप्त आर्थिक प्रगति की है। भारत का औद्योगिक वातावरण अधिक प्रतिस्पर्धी और खुला हो गया है, आधारभूत संरचना संबंधी अंतरालों को सरकारी-निजी उपायों के माध्यम से कम करने की कोशिश की गयी है, जिसमें घरेलू और विदेशी निधीयन स्रोतों का उपयोग हुआ है, चालू खाता पूर्ण परिवर्तनीय हो गया है, जबकि पूँजीगत लेखा अनिवासियों के लिए वस्तुतः मुक्त कर दिया गया है । राजकोषीय नीति के संबंध में नियम आधारित प्रतिबद्धता और मौद्रिक नीति के परिचालन के लिए यथेष्ट साधनगत स्वतंत्रता के कारण अब नीति-वातावरण अधिक कारगर हो गया है । जैसे-जैसे सांविधिक पूर्व-क्रय अधिकारों में कटौती की गयी, और ब्याज दरों को विनियमन से मुक्त किया गया, बैंकों को वाणिज्यिक उधार देने के लिए परिचालनात्मक स्वायत्तता प्राप्त हुई । इसके परिणामस्वरूप भारत की प्रति व्यक्ति आय, जिसे दुगुना होने में वर्ष 1991 तक चार दशक लगे थे, उसके बाद के 15 वर्षों में दुगुनी हो गयी और 10 वर्षों में वर्ष 2017 तक यह पुनः दुगुनी हो सकती है । यदि भारत वृद्धि की वर्तमान गति को बनाये रख सके, तो यह लाखों करोड़ों लोगों की गरीबी दूर कर सकता है और विश्व अर्थव्यवस्था को समृद्ध कर सकता है । भारत ने लंबा रास्ता तय किया है, लेकिन वर्तमान गति को बनाये रखना स्वयं चुनौतीपूर्ण होगा और इसके लिए निरंतर सुधार के प्रयास करने होंगे ।